International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

गुप्त काल के दौरान भूमि अनुदान और भूमि राजस्व प्रणाली

पिंकी देवी दलाल

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर –124021, रोहतक

डॉ. कुमारी सुमन

शोध निर्देशिका, सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर –124021, रोहतक

शोध सारः

गुप्त साम्राज्य जो लगभग 320–550 ई. तक भारत की प्रमुख राजशक्ति रहा। इसे विद्वानों द्वारा भारत का स्वर्ण युग की संज्ञा दी गयी है। पहले के मौर्य राज्य की अत्यधिक केंद्रीकृत राजस्व संरचना के विपरीत, गुप्त प्रणाली भूमि अनुदान जिसे अक्सर अग्रहार और संबंधित शब्दों के नाम से जाना जाता है, और एक अधिक उदार भूमि राजस्व प्रणाली के माध्यम से अधिक विकेंद्रीकरण की ओर विकसित हुई। इन प्रथाओं ने न केवल साम्राज्य की आर्थिक नींव को आकार दिया, बल्कि प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में दीर्घकालिक कृषि और राजनीतिक संरचनाओं को भी प्रभावित किया। यह शोध पत्र गुप्त काल के दौरान भूमि अनुदान और भूमि–राजस्व प्रणाली की प्रकृति और प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए पुरालेखीय, शिलालेखीय और विद्वानों के स्रोतों को एक साथ लाता है।

मुख्य शब्दः

भूमि अनुदान, राजस्व, कृषि, अग्रहार, ब्रह्मदेय, शिलालेख, सामंतवाद, कराधान, प्रशासन, अर्थव्यवस्था

परिचयः

गुप्त काल का शुरुआती भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है, न केवल अपनी राजनीतिक स्थिरता और सांस्कृतिक विकास के लिए, बल्कि कृषि प्रशासन और भूमि संबंधों में हुए महत्वपूर्ण बदलावों के लिए भी। इस काल में भूमि राजस्व राज्य की आय का मुख्य स्रोत था, और इसका व्यवस्थित मूल्यांकन और संग्रह शाही अर्थव्यवस्था में कृषि की बढ़ती केंद्रीय भूमिका को दर्शाता है। साथ ही, भूमि अनुदान की प्रथा – विशेष रूप से ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थानों को – गुप्त राजकोषीय और प्रशासनिक नीति की एक परिभाषित विशेषता के रूप में उभरी। गुप्त शासकों ने पहले की मौर्य और मौर्योत्तर राजस्व परंपराओं को अपनाया, लेकिन भूमि प्रबंधन में उल्लेखनीय बदलाव किए। राज्य ने खेती योग्य भूमि पर सैद्धांतिक स्वामित्व का दावा किया, जबकि किसानों को ''भाग'' (उत्पादन का एक हिस्सा), ''भोग'', ''कर'', और अन्य पारंपरिक करों के भुगतान के अधीन वंशानुगत अधिकार प्राप्त थे। शिलालेखों और साहित्यिक स्रोतों से पता चलता है कि राजस्व की मांगें आम तौर पर मध्यम थीं, जो शाही सत्ता और कृषि स्थिरता के बीच संतुलन बनाने के प्रयास का संकेत देती हैं। इस

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

प्रकार राजस्व प्रणाली ने दोहरी भूमिका निभाई। साम्राज्य की प्रशासनिक मशीनरी को बनाए रखना और सामाजिक व्यवस्था के रक्षक के रूप में शासक की छवि को मजबूत करना।

गुप्त काल का सबसे महत्वपूर्ण नवाचार भूमि अनुदानों का व्यापक वितरण था, जिसे मुख्य रूप से तांबे की प्लेटों पर लिखे शिलालेखों के माध्यम से दर्ज किया गया था। ये अनुदान अक्सर न केवल भूमि, बल्कि राजकोषीय और प्रशासनिक अधिकार भी लाभार्थियों को हस्तांतरित करते थे – जैसे करों से छूट और शाही अधिकारियों के हस्तक्षेप से मुक्ति। इस प्रथा ने विकेंद्रीकरण की ओर एक क्रमिक बदलाव को चिह्नित किया और स्थानीय अभिजात वर्ग और धार्मिक संस्थानों की बढ़ती शक्ति में योगदान दिया। विद्वानों ने इस बात पर बहस की है कि क्या ये अनुदान भारतीय सामंतवाद की शुरुआत का संकेत थे, जो कृषि संबंधों और राज्य सत्ता पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव को उजागर करते हैं।

इस प्रकार, गुप्त काल में भूमि राजस्व और भूमि अनुदानों का अध्ययन साम्राज्य की आर्थिक नींव, राज्य और ग्रामीण समाज के बीच विकसित होते संबंधों, और शुरुआती मध्यकालीन भारत को आकार देने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। गुप्त प्रशासन की उपलब्धियों और सीमाओं दोनों का आकलन करने के लिए इन संस्थानों को समझना आवश्यक है। गुप्त काल में कर और राजस्व प्रणाली का विशेष महत्व था। पैदावार का एक हिस्सा शाही राजस्व के रूप में लिया जाता था। उपरिकरा (चुंगी) एक तरह का कर था जो कपड़े, तेल आदि पर लगाया जाता था। जब किसी भी तरह का सामान एक शहर से दूसरे शहर ले जाया जाता था, तो व्यापारियों से शुल्क लिया जाता था। अगर कोई व्यापारी वह शुल्क देने में नाकाम रहता था, तो उसे अपना परिवहन रद्द करना पड़ता था, नहीं तो उसे मूल शुल्क का अधिकतम आठ गुना जुर्माना देना पड़ता था।

गुप्त काल में प्रचलित भूमि करः

- **भूमि करः** पैदावार का छठा या चौथा हिस्सा सरकारी खजाने में जमा किया जाता था। उस कर को भूमि कर कहा जाता था।
- **भोग कर या चुंगी करः** यह कर गाँव और शहर के कर्मचारियों के वेतन के हिस्से के रूप में आवंटित किया जाता था। यह टैक्स सामान पर लगाया जाता था।
- **भूतप्रत्यय या उत्पाद शुल्कः** यह टैक्स साम्राज्य के अंदर बने सामान पर लगाया जाता था। इसके अलावा बंदरगाहों, घाटों और सुरक्षित शहरों पर भी टैक्स लगाया जाता था। बंजर जमीनें, जंगल और नमक की खदानें राज्य के स्वामित्व में थीं। उन्हें किराए पर देकर या उनसे बने उत्पादों को बेचकर पैसा कमाया जाता था। बंजर जमीन राज्य की संपत्ति थी, इसका प्रबंधन स्थानीय संस्थाओं द्वारा किया जाता था।

फाहियान लिखते हैं कि 'केवल उन्हीं लोगों को अनाज का एक हिस्सा देना पड़ता था जो राज्य की जमीन पर खेती करते थे। उनके इस बयान से इतिहासकारों के मन में भ्रम पैदा

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

हो गया है। कई लोगों का मानना है कि ज्यादातर राजस्व राज्य की जमीन के किराए से इकट्ठा किया जाता था। लेकिन यह विचार पूरी तरह सही नहीं है। अगर फाहियान की गवाही को मान लिया जाए, तो शराब की बिक्री से राज्य की आय को इसमें शामिल नहीं किया जाना चाहिए। अर्थशास्त्र में शराब की बिक्री को राज्य की आय के स्रोतों में से एक बताया गया था। गुप्त काल से पहले और बाद के दस्तावेज बताते हैं कि गुप्त काल में भी शराब पीना सख्ती से मना नहीं था। फाहियान के अनुसार, 5वीं सदी की शुरुआत में मध्य साम्राज्य के लोग समृद्ध और खुश थे। उन्होंने भारत में समृद्धि और शांति का भी ऐसा ही जिक्र किया है। लोग उच्च जीवन स्तर और शहर के जीवन की विलासिता को भी बनाए हुए थे।

राजस्व प्रशासनः

राजस्व प्रशासन को चलाने के लिए कई अधिकारियों को नियुक्त किया गया थाः

- पुस्तपालः किसी भी तरह के लेन–देन को रिकॉर्ड करने से पहले पुस्तपाल पूछताछ करते थे और उसके बाद वे सभी तरह की लेन–देन की जानकारी अपने रिकॉर्ड में शामिल करते थे।
- गोपश्रामिनीः उन्होंने अकाउंट रजिस्टर में कई संकट दर्ज किए, इसके अलावा उन्होंने शाही शुल्क भी वसूल किए। उन्होंने गबन की भी जाँच की और लापरवाही या धोखाधड़ी से हुए नुकसान के लिए जुर्माना वसूला[i]।

समुद्रगुप्त के समय में, हम एक अधिकारी गोपाश्रामिन के बारे में सुनते हैं जो अक्षपटलाधिकृत के रूप में काम करता था। उसका कर्तव्य था कि वह खातों के रजिस्टरों में कई मामलों को दर्ज करे, नौकरों के जमानतियों से शाही बकाया वसूल करे, गबन की जाँच करे और लापरवाही या धोखाधड़ी के कारण हुए नुकसान के लिए जुर्माना वसूल करे[ii]। एक और प्रमुख उच्च अधिकारी पुस्तपाल (रिकॉर्ड–कीपर) था। किसी भी लेन–देन को रिकॉर्ड करने से पहले पूछताछ करना उसका कर्तव्य था। गुप्त राजाओं ने भूमि के उचित सर्वेक्षण और माप के साथ–साथ भू–राजस्व के संग्रह के लिए एक नियमित विभाग बनाए रखा था। कामंदक ने नीतिसार में सुझाव दिया है कि एक राजा को अपने खजाने का विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि राज्य का जीवन पूरी तरह से उसी पर निर्भर करता है[iii]। कालिदास और नारद–स्मृति के लेखक दोनों कहते हैं कि उपज का छठा हिस्सा शाही राजस्व के रूप में लिया जाना चाहिए। इसके अलावा उपरिकर था जो कपड़े, तेल आदि पर तब लगाया जाता था जब उन्हें एक शहर से दूसरे शहर ले जाया जाता था। व्यापारियों के संगठन को एक निश्चित वाणिज्यिक कर (शुल्क) देना पड़ता था, जिसका भुगतान न करने पर व्यापार करने का अधिकार रद्द कर दिया जाता था और मूल शुल्क का आठ गुना जुर्माना लगाया जाता था। राजा को बेगार (विष्टि), बलि और कई अन्य प्रकार के योगदान का अधिकार था। शाही भूमि और जंगलों से राजा की आय को उसकी व्यक्तिगत आय माना जाता था। इसके अलावा, राजा के खजाने को खजाने (सिक्कों के ढेर, गहने या अन्य कीमती वस्तुओं के रूप में

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

खजाने, जो गलती से जमीन के नीचे से पाए जाते थे), खानों की खुदाई और नमक के निर्माण का अधिकार था।

भूमि अनुदानः

भूमि अनुदान की उत्पत्ति

गुप्त काल में भूमि अनुदान की प्रथा अचानक शुरू नहीं हुई, बल्कि प्राचीन भारत में पहले की प्रशासनिक, आर्थिक और धार्मिक परंपराओं से धीरे–धीरे विकसित हुई। इसकी जड़ें मौर्य काल के अंत और मौर्योत्तर काल में खोजी जा सकती हैं, जब शासकों ने ब्राह्मणों, अधिकारियों और धार्मिक संस्थानों को भूमि और राजस्व अधिकारों के उपहार देकर पुरस्कृत करना शुरू किया। हालाँकि, यह गुप्तों के शासनकाल में ही था कि इस प्रथा ने एक व्यवस्थित और व्यापक रूप ले लिया, और राज्य नीति का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई।

भूमि अनुदान के शुरुआती वैचारिक आधारों में से एक ''ब्राह्मणवादी दान की अवधारणा'' थी, जिसे राजत्व का एक पवित्र कर्तव्य माना जाता था। धर्मशास्त्र ग्रंथों में भूमि दान करने, विशेष रूप से वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों को दान करने से प्राप्त धार्मिक पुण्य पर जोर दिया गया था। गुप्त शासकों ने, जिन्होंने खुद को ''वर्ण–धर्म'' के रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया, अपनी सत्ता को वैध बनाने के लिए भूमि अनुदान का इस्तेमाल किया, साथ ही नए बसे या राजनीतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में ब्राह्मणवादी संस्थानों को मजबूत किया[iv]।

आर्थिक रूप से, भूमि अनुदान की उत्पत्ति कृषि के विस्तार और ''बंजर भूमि और वन क्षेत्रों को खेती के तहत लाने की आवश्यकता'' से निकटता से जुड़ी हुई थी। कर छूट के साथ भूमि अनुदान देकर, राज्य ने ब्राह्मणों और धार्मिक प्रतिष्ठानों को कृषि विस्तार के एजेंट के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया। गुप्त काल के तांबे की प्लेटों पर लिखे शिलालेख, जैसे कि ''दामोदरपुर प्लेटें'', बताते हैं कि इन अनुदानों में अक्सर बिना खेती वाली भूमि शामिल होती थी, जो भारी प्रशासनिक खर्च के बिना कृषि उत्पादन बढ़ाने की एक जानबूझकर अपनाई गई नीति का संकेत देता है[v]।

प्रशासनिक रूप से, भूमि अनुदान साम्राज्य प्रबंधन की बढ़ती जटिलता का एक व्यावहारिक समाधान बनकर उभरा। जैसे–जैसे गुप्त राज्य स्थानीय अधिकारियों पर अधिक निर्भर होता गया, दान प्राप्तकर्ताओं को वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों के हस्तांतरण से केंद्रीय अधिकारियों पर बोझ कम हो गया। इन अनुदानों में अक्सर करों से छूट और शाही एजेंटों के प्रवेश पर प्रतिबंध जैसी छूट दी जाती थी, जो पहले की केंद्रीकृत राजस्व संग्रह प्रणालियों से एक महत्वपूर्ण बदलाव था[vi]। इस प्रकार, गुप्त काल में भूमि अनुदान की उत्पत्ति ''धार्मिक विचारधारा, आर्थिक आवश्यकता और प्रशासनिक सुविधा'' के संगम पर हुई थी। जो एक पवित्र और व्यावहारिक प्रथा के रूप में शुरू हुआ था, उसने धीरे–धीरे शुरुआती भारत की कृषि संरचना को बदल दिया और गुप्त काल के बाद नए तरह के ग्रामीण अधिकार की नींव रखी।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

गुप्त काल के स्रोतों से पता चलता है कि कृषि समाज में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे। गुप्तों के शासनकाल में पुजारियों और प्रशासकों को वित्तीय और प्रशासनिक रियायतें देने के साथ सामंती विकास सामने आया। दक्कन में सातवाहनों द्वारा शुरू की गई यह प्रथा गुप्त काल में एक नियमित बात बन गई। धार्मिक अधिकारियों को हमेशा के लिए, कर–मुक्त भूमि दी जाती थी, और उन्हें किसानों से वे सभी कर वसूलने का अधिकार दिया गया था जो अन्यथा सम्राट के पास जाते।

धार्मिक अनुदान दो प्रकार के थे, अग्रहार अनुदान ब्राह्मणों के लिए थे जो स्थायी, वंशानुगत और कर–मुक्त होते थे, साथ ही सभी भूमि राजस्व का अधिकार भी दिया जाता था। देवग्रहारा अनुदान लेखकों और व्यापारियों जैसे गैर–धार्मिक लोगों को मंदिरों की मरम्मत और पूजा के उद्देश्य से दिए गए थे[vii]।

इसके अनुसार, पुलिंदभट्ट नामक व्यक्ति को दो गाँव हमेशा के लिए, वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों के साथ, एहसान के तौर पर दिए गए थे[viii]। प्रशासनिक और सैन्य सेवाओं के लिए अधिकारियों को दिए गए भूमि अनुदान के पुरालेखीय प्रमाण नहीं मिलते हैं, हालांकि ऐसे अनुदानों से इनकार नहीं किया जा सकता है[ix]। वास्तव में, भागिका और भोगपालिका जैसे प्रशासनिक अधिकारियों के कुछ पदनाम यह बताते हैं कि राज्य के कुछ अधिकारियों को भूमि अनुदान द्वारा वेतन दिया जाता रहा होगा[x]।

भूमि अनुदानों ने भारत में सामंती विकास का रास्ता साफ किया। कई शिलालेखों में दास प्रथा के उदय का जिक्र है, जिसका मतलब था कि किसान अपनी जमीन से जुड़े रहते थे, भले ही वह जमीन किसी और को दे दी जाती थी। इस तरह देश के कुछ हिस्सों में स्वतंत्र किसानों की स्थिति कमजोर हो गई, और वे दास या अर्ध–दास बन गए[xi]। किसानों पर अत्याचार का एक कारण भूमि अनुदान पाने वालों को दिया गया उप–सामंतीकरण का अधिकार भी था। उन्हें अक्सर जमीन का इस्तेमाल करने, दूसरों से इस्तेमाल करवाने, खेती करने या खेती करवाने का अधिकार दिया जाता था। इस तरह दान की गई जमीन को कुछ शर्तों पर किरायेदारों को दिया जा सकता था। इसका मतलब यह भी था कि दान पाने वाले को किरायेदारों को उनकी जमीन से बेदखल करने का अधिकार था। इसलिए उप–सामंतीकरण की प्रथा ने स्थायी किरायेदारों को इच्छानुसार किराएदारों की स्थिति में ला दिया। गुप्त काल से किसानों की स्थिति जबरन मजदूरी (विष्टि) और कई नए करों और शुल्कों के कारण भी कमजोर हो गई थी[xii]।

खेती की फसलें समाज के मुख्य संसाधन थीं और राज्य की ज्यादातर कमाई खेती से आती थी। कई विद्वानों का मानना है कि जमीन का एकमात्र मालिक राज्य था। जमीन पर राज्य के एकमात्र मालिकाना हक के पक्ष में सबसे निर्णायक तर्क बुद्धगुप्त के पहाड़पुर तांबे के शिलालेख में मिलता है। ऐसा लगता है कि हालांकि जमीन हर तरह से किसानों की थी, लेकिन राजा उस पर सैद्धांतिक मालिकाना हक का दावा करता था[xiii]।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

शिलालेखों में कई तरह की जमीनों का जिक्र है, खेती वाली जमीन को आमतौर पर क्षेत्र कहा जाता था, खिल बिना खेती वाली जमीन थी, अप्रहत जंगल या वन भूमि थी, गोपता सरह चारागाह भूमि थी और वस्ती रहने लायक जमीन थी। अलग–अलग इलाकों में जमीन मापने के अलग–अलग तरीके थे जैसे निवर्तन, कुल्यवाप और द्रोणवाप[xiv]। भारत में बहुत पुराने समय से ही खेती के लिए सिंचाई के महत्व को पहचाना गया था। नारद के अनुसार, दो तरह के बांध होते थे, बर्ध्य जो खेतों को बाढ़ से बचाते थे और खय जो सिंचाई के काम आते थे[गअ]।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि गुप्त काल की कराधान और राजस्व प्रणाली ने साम्राज्य की आर्थिक रीढ़ बनाई और इसकी राजनीतिक स्थिरता और प्रशासनिक दक्षता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृषि राज्य की आय का प्राथमिक स्रोत बनी रही, जिसमें भूमि राजस्व शाही कमाई का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा था। हालांकि शिलालेखों से कराधान की सटीक संरचना के बारे में सीमित जानकारी मिलती है, लेकिन साहित्यिक स्रोत और यात्रियों के विवरण एक विविध कर प्रणाली के अस्तित्व का संकेत देते हैं, जिसमें भूमि कर, सीमा शुल्क और वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क शामिल हैं। बंजर भूमि, जंगलों और खनिज संसाधनों पर राज्य के अधिकार ने इसके राजस्व आधार को और मजबूत किया, जबकि स्थानीय संस्थानों ने उनके प्रबंधन में सहायता की।

चीनी तीर्थयात्री फाह्यान के अवलोकन से पता चलता है कि गुप्त राज्य ने अपेक्षाकृत उदार और मानवीय राजकोषीय नीति बनाए रखी, जिसने सामाजिक शांति और आर्थिक समृद्धि में योगदान दिया। राज्य के भूमि स्वामित्व की सीमा और राजस्व के स्रोतों के बारे में विद्वानों की बहस के बावजूद, यह स्पष्ट है कि गुप्त प्रशासन अपने विषयों के कल्याण के साथ राजस्व संग्रह को संतुलित करने में सफल रहा। कुल मिलाकर, गुप्त राजस्व प्रणाली एक सुव्यवस्थित कृषि अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक समन्वय और समृद्धि के स्तर को दर्शाती है जिसने प्रारंभिक भारतीय इतिहास में इस काल को एक शास्त्रीय युग के रूप में ख्याति दिलाई। गुप्त काल की कराधान और राजस्व प्रणाली ने साम्राज्य की आर्थिक रीढ़ बनाई और इसकी राजनीतिक स्थिरता और प्रशासनिक दक्षता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृषि राज्य की आय का प्राथमिक स्रोत बनी रही, जिसमें भूमि राजस्व शाही कमाई का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा था। हालांकि शिलालेखों से कराधान की सटीक संरचना के बारे में सीमित जानकारी मिलती है, लेकिन साहित्यिक स्रोत और यात्रियों के विवरण एक विविध कर प्रणाली के अस्तित्व का संकेत देते हैं, जिसमें भूमि कर, सीमा शुल्क और वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क शामिल हैं। बंजर भूमि, जंगलों और खनिज संसाधनों पर राज्य के अधिकार ने इसके राजस्व आधार को और मजबूत किया, जबकि स्थानीय संस्थानों ने उनके प्रबंधन में सहायता की।

चीनी तीर्थयात्री फाह्यान के अवलोकन से पता चलता है कि गुप्त राज्य ने अपेक्षाकृत उदार और मानवीय राजकोषीय नीति बनाए रखी, जिसने सामाजिक शांति और आर्थिक समृद्धि में

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

योगदान दिया। राज्य के भूमि स्वामित्व की सीमा और राजस्व के स्रोतों के बारे में विद्वानों की बहस के बावजूद, यह स्पष्ट है कि गुप्त प्रशासन अपने विषयों के कल्याण के साथ राजस्व संग्रह को संतुलित करने में सफल रहा। कुल मिलाकर, गुप्त राजस्व प्रणाली एक सुव्यवस्थित कृषि अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक समन्वय और समृद्धि के स्तर को दर्शाती है जिसने प्रारंभिक भारतीय इतिहास में इस काल को एक शास्त्रीय युग के रूप में ख्याति दिलाई।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

[i] बाशम, ए. एल. (2004). द वंडर दैट वाज इंडिया, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ.सं 110–113

[ii] आल्टेकर, ए. एस. (1957), प्राचीन भारत में राज्य और शासन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 223–225

[iii] सरकार, डी. सी. (1966), भारतीय एपिग्राफी, मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 214–216

[iv] थापर, रोमिला. (2002), प्रारंभिक भारतः उत्पत्ति से 1300 ई. तक, पेनगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 297–298

[v] सरकार, डी. सी. (1965), भारतीय शिलालेख, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 252–254

[vi] शर्मा, आर. एस. (1980), भारतीय सामंतवाद (ई. 300–1200), मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 32–35

[vii] सरकार, डी. सी. (1966), भारतीय अभिलेखशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

[viii] शर्मा, आर. एस. (1980), भारतीय सामंतवाद (ई. 300–1200), मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली

[ix] थापर, रोमिला. (2002), प्रारंभिक भारतः उद्भव से 1300 ईस्वी तक, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली

[x] आल्टेकर, ए. एस. (1957), प्राचीन भारत में राज्य और शासन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली

[xi] शर्मा, आर. एस. (1980, भारतीय सामंतवाद (ई. 300–1200), मैकमिलन इंडिया, पृ. 32–34, नई दिल्ली

[xii] थापर, रोमिला. (2002), प्रारंभिक भारतः उद्भव से 1300 ईस्वी तक, पेंगुइन बुक्स, पृ. 285–287, नई दिल्ली

[xiii] शर्मा, आर. एस. (1980), भारतीय सामंतवाद (ई. 300–1200), मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 24–28

[xiv] थापर, रोमिला. (2002), प्रारंभिक भारतः उद्भव से 1300 ईस्वी तक, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली पृ. 279–281

[xv] शर्मा, आर. एस. (1980), भारतीय सामंतवाद (ई. 300–1200), मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 27